आनन्द-पुस्तकमालाका द्वितीय पुष्प

वाल्मीकिका अपने काव्य

में

'आत्म-प्रकाश'

मूल लेखक—

वेणीमाधव वरुआ एम० ए०, डी० लिट्०

अनुवादक—

कुमार गंगानन्द सिंह एम० ए०

प्रकाशक—

राघवप्रसाद गुप्त

आनन्द-पुस्तकमाला कार्यालय

पुर्णियां

प्रथमवार १००० } १९२६ { मूल्य ।=)

प्रकाशक—
राधवप्रसाद गुप्त
आनन्द-पुस्तकमाला कार्य्यालय,
पुर्णियां

मुद्रक—
किशोरीलाल केडिया
'वणिक् प्रेस'
१, सरकार लेन, कलकत्ता

प्रकाशकका वक्तव्य

अन्धकार है वहां जहां आदित्य नहीं है,
है वह मुर्दा देश जहां साहित्य नहीं है।
—'पूर्ण'

साहित्य ही किसी देश अथवा जातिकी स्थायी सम्पत्ति है। यह वह स्वच्छ एवं निर्मल दर्पण है जिसमें किसी देश अथवा उसके निवासियोंकी उन्नत अथवा अनुन्नत दशाका पर्य्याप्त प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है। अतएव प्रत्येक व्यक्तिका यह कर्त्तव्य होना चाहिये कि वह अपने साहित्यको उन्नतिकी चरम सीमापर पहुंचावे। मैंने इसी लक्ष्यको सामने रख इस मालाकी स्थापना की है। पर यहां यह कहना कदापि अत्युक्ति न होगी कि साहित्य-सेवियोंको पग-पगपर अनेकानेक विघ्न-बाधाओंका सामना करना पड़ता है। उनके मार्ग सदैव ही कंटकोंसे परिपूर्ण रहा करते हैं। मुझे बहुत आशा थी कि यहांके धनी, मानी सज्जन इस दुष्कर कार्य्यमें अपना-अपना हाथ बंटाकर मेरी मनोकामनाको सफलताके उच्च शिखरपर पहुंचानेमें तनिक भी मुंह नहीं मोड़ेंगे। बहुतोंने तो बहुत कुछ आशा दिलायी थी, कितनोंने तो आर्थिक सहायताके लिये भी वचन दिये थे पर शोक! मेरा वह सुखस्वप्न पूर्ण न हो सका।

और इन्हीं अड़चनोंके उपस्थित होनेसे इस मालाका द्वितीय पुष्प उचित समयपर प्राकाशित न हो सका, वहुत ही विलम्ब हो गया। इसका मुझे बहुत खेद है, पर विधिकी इच्छा ही प्रवल है। मानव-प्रयत्न कहांतक उसका सामना कर सकता है।

पुस्तकके विषयमें कहना ही क्या! सुप्रतिष्ठित एवं विद्वान लेखक महोदयने इस निवन्धको वड़े खोजके साथ लिखा था। उनके अगाध अध्ययनका यह नमूना है। पुस्तक उसी निवन्धका अविकल अनुवाद है जिसका अनुवादक महोदयकी भूमिकामें पूर्णरूपसे उल्लेख किया गया है। आदि-कवि वाल्मीकिके जीवन-चरित्रके विषयमें वहुत-सी ज्ञातव्य वातोंका लिखना और वह भी उनके काव्यग्रन्थाधारपर अभीतक सम्भवतः हिन्दीके सुलेखकोंने सुचारुरूपसे नहीं किया है। अस्तु, जहांतक मैं समझता हूं यह अनुवाद हिन्दी-प्रेमियोंको अवश्य ही रुचिकर प्रतीत होगा। पुस्तक अपना परिचय आप ही देगी। आशा है हिन्दीके विद्वान इस पुस्तकका समुचित समादर कर मेरे उत्साहको नवजीवन प्रदान करेंगे। अन्तमें कुमारजीने जो मुझे अपनी पुस्तक प्रकाशित करनेके लिये दे दी इसके लिये हार्दिक धन्यवाद देता हूं।

राघवप्रसाद गुप्त
प्रकाशक

भूमिका

यह निबन्ध कलकत्ता विश्व-विद्यालयके प्रोफेसर श्रीयुक्त डा० वेणीमाधव बरुआ एम० ए०, डी० लिट्० के द्वारा लिखित एक अंगरेज़ी निबन्धका हिन्दी अनुवाद है। बरुआजीने वाल्मीकिके विषयमें एक निबन्ध लिखना आरम्भ किया है, उसीका यह प्रथम भाग है।

तर्क या शास्त्रीय विषयोंकी विवेचना करनेमें भारतवासी चिरकालसे प्रसिद्ध हैं; परन्तु दुर्भाग्यवश विदेशीय भाषाओंका ज्ञान न रहनेके कारण कितने ही प्रतिभाशाली आजकलके वादानुवाद-विषयक ज्ञानसे वञ्चित रहते हैं। इसलिये जो हिन्दी और विदेशीय भाषाके ज्ञाता हैं, उन्हें चाहिये कि अन्यान्य भाषाओंसे ऐसे-ऐसे निबन्धोंका अनुवाद वा स्वयं गवेषण-पूर्ण लेख लिखकर, उन्हें, जो केवल हिन्दी ही जानते हैं, उन निबन्धोंपर विवेचना करनेका अवसर दें, जिससे वे लोग भी उन विषयोंकी आलोचनामें सम्मिलित हो सकें और हिन्दी-साहित्यके उस अंशको, जिसकी अभी बहुधा त्रुटि देखनेमें आती है, पूरा कर सकें। मैंने भी इसी लक्ष्यको सामने रख, इस निबन्धको हिन्दीमें लिखा है। मुझसे जहांतक हो सका है, लेखकके प्रत्येक वाक्यका अविकल अनुवाद किया है। अपनी ओरसे उसमें कुछ भी घटाना-बढ़ाना उचित नहीं समझा; क्योंकि यदि मैं उसका केवल सारांश ही खींचकर निबन्ध लिखता, जैसे कि इन दिनों कितने ही अनुवादक लोग लेख रोचक होनेके अभिप्रायसे मूल लेखको घटा-बढ़ाकर छायानुवाद करते हैं, तो लेखकके कितने ही अनुभूत विषयोंका लोप हो जाता और उनके वास्तविक हृद्गत भावोंका पूरा पता नहीं लगता। इसलिये मैं इस अनुवादको वैसा रोचक नहीं बना सका, जैसा कि आजकलके उपन्यास-प्रेमी रसिकलोग पसन्द

करते हैं। और इसके वाक्य-काठिन्य तथा अधिकतर संस्कृत शब्दोंका प्रयोग करनेका कारण, ऐसे गहन विषयोंका अंगरेजीसे हिन्दी-भाषामें उल्लेख करते समय बोल-चालके प्रचलित शब्दोंका न मिलना ही है। शब्दोंका शक्तिग्रह रखनेकी यथासाध्य चेष्टा की गयी है। साथ ही इसके, इसमें खटकनेवाली एक बात और है, वह है बेतुकी कविता! मूललेखमें जो पद्य है, उसका अनुवाद पद्यमें ही किया गया है; परन्तु अन्त्यानुप्रास-रहित। छन्दकी मात्रा, गति और लय ठीक होनेपर पदान्तमें तुक मिलना ही चाहिये, यह कोई आवश्यक नहीं है, यदि होता तो संस्कृतके सभी समवृत्त अनुप्रासबद्ध ही पाये जाते। अन्य भाषामें भी कितने ही काव्य अनुप्रास-रहित मिलते हैं। तुक मिली हुई कविता कर्णसुखद होनेपर भी यह कोई नियम नहीं है कि कविताका भाव विगाड़कर भी छन्दमें किसी तरह तुक मिलाना ही चाहिये। कोई-कोई कवि तो तुकके इतने पाबन्द होते हैं कि सार्थक शब्द-अनुप्रास न मिलनेपर निरर्थक शब्दका भी प्रयोग कर डालते हैं, जिससे कविताका अर्थ-गौरव नष्ट हो जाता है। अनुप्रास छन्दके लक्षणोंमें न होकर शब्दालङ्कारके अन्तर्गत है। छन्दमें तुक न मिलनेपर भी उसके सरस वाक्यकी मधुरतामें कोई हानि नहीं पहुंचती है। अतएव मैंने इस निबन्धमें हिन्दी पद्योंको तुकान्त करनेकी उतनी ज़रूरत नहीं देखी। आशा है, हिन्दी-कविताकाके तुकान्त-प्रेमी सज्जन महाशय पुरातन परिपाटीके विरुद्ध मेरे इस अनुप्रास-रहित हिन्दी पद्योंपर लक्ष्य न कर केवल भाव ग्रहण करेंगे। इस निबन्धमें मुझे जहां आवश्यकता देख पड़ी है, वहां टिप्पणी तथा मूल लेखका भी उल्लेख कर दिया है।

श्री गंगानन्द सिंह (एम० ए०)

वाल्मीकिका अपने काव्यमें आत्म-प्रकाश*

किसी काव्यका विचार तथा गुण ग्रहण करनेके अनेक तरीके हैं और ख़ासकर ऐसे काव्यका, जिसका प्रभाव किसी उच्च जातिके लोगोंको सभ्यतापर पड़ा हो तथा जिसका वास्तविक उत्कर्ष निर्विवाद हो। ये तरीके सुगमतासे कम किये जा सकते हैं और निम्नलिखित प्रणालियोंके अन्तर्गत उल्लिखित हो सकते हैं।

१—पाण्डित्य विषयक अथवा समालोचना विषयक।

२—आध्यात्मिक।

३—ऐतिहासिक।

अब हमें यह आलोचना करनी चाहिये कि इन प्रणालियोंका क्या अर्थ है और स्थिर करना चाहिये कि सम्यक् रूपसे मिलाये जानेपर ये हमें कैसे इस विषयको सिद्ध करनेमें सहायता देती हैं कि काव्य, कविकी अन्तरात्माकी स्थायिनी स्मृति और उनके

*इस निबन्धको डा० बरुआने Y. M. C. A. के विद्यार्थी-विभाग-भवनमें उसके साहित्य-विभागकी एक सार्वजनिक सभामें पढ़ा था। फिर कलकत्ता विश्वविद्यालयके Journal of the Department of Lettes 1920. Vol III. में यह प्रकाशित हुआ। अनुवाद उसीसे किया गया है।

समकालीनयुग समाजकी छाया तथा परवर्ती युगके इतिहासकी पूर्वकल्पनाके सिवाय और कुछ नहीं है।

पाण्डित्य विषयक अथवा समालोचना विषयक विचार :—

इसके अन्तर्गत हमें प्राचीन तथा अर्वाचीन दो प्रकारकी प्रणालियोंको रखना होगा। भाष्यकारोंकी प्रणाली प्राचीन प्रणाली है। इसमें काव्यके विश्लेषणके साथ-साथ शब्दोंकी औत्पत्तिक परीक्षा तथा परम्परागत विवरण सम्मिलित है। भाष्यकारगण वाह्यरूपसे विचार करते हैं कि रामायण महाकाव्य है या नहीं। इसमें महाकाव्यके सब लक्षण हैं या नहीं। वे मुख्य विषयकी पर्यालोचना कर यह बतलाते हैं कि यह किस प्रकार सारी कथाको अनुप्राणित तथा समर्थन करता है और समूची कथाकी भी परीक्षा इस दृष्टिसे करते हैं जिससे कि वे 'महाकाव्यकी उत्कृष्टताके उपयुक्त वह है या नहीं,' यह निश्चित कर सकें। उनकी निर्णय विषयकी उत्कृष्टता, पद्योंकी मधुरता, लयकी सुस्वरता, मूर्छनाकी गरिमा तथा सुश्राव्यता, असत्य तथा नीचताके प्रति घृणा, अनुभव बढ़ानेवाले समग्र भावोंका संयोग, नाटकीय स्थापनाके साथ साथ विस्मयोत्पादक अवस्थितियां और विशेषतया नैतिक उच्चता प्रभृति महाकाव्यके अनिवार्य्य अंशोंके औचित्यकी विवेचनासे होती है। भाष्यकारोंका प्रधान कार्य्य मूलकी व्याख्या करना तथा उनकी दृष्टिमें आये हुए द्वैधका पारम्परीय और पारमार्थिक दृष्टिसे समाधान करना था, परन्तु आधुनिक परिपाटीका कुछ अंश समालोचनात्मक और कुछ ऐतिहासिक है।

पुरानी परिपाटीसे इसका सादृश्य केवल इतनाही है कि यह भी बाहर हीसे काव्यकी विवेचना करता है। एक ओर पुरानी परिपाटी नियमतः विभिन्नताओं तथा त्रुटियोंका समाधान करनेकी ओर झुकी रहती है और दूसरी ओर आधुनिक सम्प्रदायकी समालोचनात्मक परिपाटी निश्छल भावसे वस्तुओंकी यथार्थ विवेचना, कपट-निवेशित लेखोंका अनुसन्धान तथा महाकाव्यके आदिस्वरूपका निर्णय करती है। यह प्रणाली आभ्यन्तरिक तथा वाह्यिक प्रमाणोंकी तुलना कर इसके शास्त्रीय तथा ऐतिहासिक महत्त्वके निरूपण करनेकी दृष्टिसे इसके रचनाकालको निश्चित करनेका यत्न करती है।

आध्यात्मिक विचार—पाण्डित्य विषयक अथवा समालोचनात्मक प्रणालीके अतिरिक्त एक और प्रणाली है —वह है आध्यात्मिक। काव्यकी वाह्यालोचनाके बदले यह हमलोगोंको किसी-न-किसी चालसे कविके दृष्टिपथपर स्थापित करनेकी ओर तथा जिस प्रकारसे वे देखते हैं उसी प्रकार वस्तुओंको देखनेकी ओर लिये जाती है। दृश्य-घटना तथा पात्र-समुदाय जो वाह्यालोचना द्वारा सत्य प्रतीत होते हैं, कविकी अपनी दृष्टिसे अवलोकन करनेपर केवल कविकी कल्पनाके सृष्टि मात्र ही ठहरते हैं। इसे यों भी कह सकते हैं कि ये उपाय मात्र हैं जिनके द्वारा कवि अपने अन्तर्जीवन तथा अनुभवोंका विकाश करता है और समाज तथा सभ्यताकी उस दशाको चित्रित करता है जिसमें उसका रहन-सहन था। यह प्रणाली, जिसे हम आध्या-

त्मिक कहते हैं, इतनी आत्मोत्पत्ति विकाशात्मक है, जितनी कि यह कविके मानसिक सम्बर्धनको अङ्कित करनेका निरूपण करती है।

ऐतिहासिक विचारः—आध्यात्मिक अथवा आत्मोत्पत्ति विकाशात्मक प्रणाली जब सम्यक्‌रूपसे प्रयुक्त होती है तब हमें कविसे या उनके अन्तर्जीवनसे संसर्ग करनेमें अवश्य सहायता कर सकती है। परन्तु यह इतनी पूर्ण नहीं है कि आप ही आप कवि तथा उनके देश, काल और उनके चारों ओरकी चीजोंके विषयमें जितनी समस्यायें उठ सकती हैं, उन्हें हल करनेके योग्य हमें बना सके। इतिहासकी गम्भीरतर समस्या अब भी समालोचकोंका सामना कर रही है—जैसे कि भारतवर्षीय सभ्यताकी किस अवस्थामें रामायणका अपने उत्कर्षके साथ महाकाव्य होना संभव हुआ और आगामी युगोंकी व्युत्पन्नतापर इसका क्या प्रभाव पड़ा। हम इस लेखमें आध्यात्मिक दृष्टिसे इस विषयका विचार करना चाहते हैं कि यदि इस काव्यको बाह्यिक रूपसे तथा खण्ड-खण्ड कर विवेचना करनेके बदले हम इस समूचेकी विवेचना करना चाहें तो इसका सबसे उत्तम तथा एकमात्र उपाय होगा कि हम अपनेको इसके बाहर नहीं, बल्कि भीतर ही रक्खें; बर्गसन (एक प्रसिद्ध फ्रांसीसी दार्शनिक) के कथनानुसार इसकी उत्कृष्ट वस्तुओंके साथ मानसिक सहानुभूति द्वारा अभिन्नता स्थापित करें और सबसे अधिक कविके साथ समागम करें जिनका जीवन, जिनकी विद्या, जिनका चरित्र

और अनुभव, उनकी रचनाकी पृष्ठभित्तिमें विद्यमान है। मेरे जानते इस प्रकारके अध्ययनसे बढ़कर लाभदायक दूसरा कुछ नहीं है।

इस विषयके पहले उस महाकाव्यके मौलिक रूपके सम्बन्ध-में,जो ईश्वर-प्रदत्त शक्तिवाले वाल्मीकि मुनिका अपने बारेमें छोड़ा हुआ एक-मात्र लेख है, दो-एक बातें कहनी ज़रूरी है। आधुनिक समालोचकोंका मत है कि पूर्व इस महाकाव्यके केवल पांच ही काण्ड थे। प्रथम और सप्तम काण्ड (बाल और उत्तर) पीछे जोड़े गये। "मूल काव्यके प्रारम्भका, जो वास्तवमें एक अंश था, वह द्वितीय काण्डकी आदिके अपने अनुक्रमसे निकाल लिया गया है और वही अब प्रथम (बाल) काण्डके पांचवें सर्गका आदि रूप है। मूल काण्डोंमें कुछ सर्गोंका निक्षेप भी पीछे किया-गया है।"* यह जर्मन-देशीय आचार्य जैकोबीके अन्वेषणका फल है, जिसे इङ्गलैण्ड निवासी आचार्य मैकडौनलने अपने संस्कृत-साहित्यके इतिहासके ३०४ थे पृष्ठमें संक्षिप्त किया है। आचार्य ग्रिफिथ रामायणके अपने ललित अनुवादके परिशिष्टके आठवें पृष्ठमें लिखते हैं—

"महाकाव्यकी दृष्टिसे सम्पूर्ण रूपसे रामायणका अन्त,विजयी

* "What was obviously a part of the Commencement of the original poem has been separated from its Continuation at the opening of BK. II, and now forms the beginning of the 5th canto of Book I. Some cantos have also been interpolated in the genuine Books."

रामके परित्राण की गई अपनी रानी सीताके सहित अयोध्यामें प्रत्यागमन तथा अपने पूर्वपुरुषोंकी राजधानीमें उनके राज्या-भिषेकके साथ-साथ होता है। यदि कथा सम्पूर्ण नहीं भी होती तोभी छठे काण्डका अन्तिम सर्ग सरासर वाल्मीकिसे पीछेका किसीके हाथका काम है, जो रामके यशस्कर तथा सुखमय राज्यका व्याख्यान करता है और रामायण पढ़ने तथा सुननेवा-लोंके प्रति कल्याणकी प्रतिज्ञा करता है और यह दिखानेके लिये काफ़ी है कि जब ये पद्य जोड़े गये थे तब यह काव्य सम्पूर्ण समझा जाने लगा था। उत्तर-काण्ड अर्थात् अन्तिम काण्ड केवल परिशिष्ट है और मूल-रचनामें वर्णित कथाओंके अगले तथा पिछले विषयोंसे सम्बन्ध रखता है।" *

आचार्य कौवेल, कलकत्ता-संस्कृत-कालेजके भूतपूर्व प्रधाना-

* The Ramayan ends, epically complete, with the triumphant return of Rama and his rescued queen to Ayodhya, and his consecration and coronation in the capital of his [forefathers. Even if the story were not complete, the conclusion of the last canto of the Sixth Book is evidently the work of a later hand than Valmiki's, which speaks of Rama's glorious and happy reign, and promises blessings to those who read and hear the Ramayan, would be sufficient to show that, when these verses were added, the poem was considered to be finished. The Uttara Kanda or Last Book is merely an appendix or a supplement, and relates only events antecedent and subsequent to those described in the original poem."

ध्यक्ष भी इसी प्रकार कहते हैं—"हिन्दुओंके दोनों महाकाव्योंका अन्त शोक तथा निराशासे होता है। महाभारतमें पांचों विजयी भाई कठिनतासे लाभ किये हुए राजसिंहासनको एक-एक कर हिमालयकी निर्जनयात्रामें प्राण देनेके लिये छोड़ते हैं; उसी प्रकार राम अपनी पत्नीको इतने कष्टसे खोने ही के लिये प्राप्त करते हैं। होमरके कथावृत्तके पिछले भागमें भी इसी प्रकार है। ईलियडके प्रधान पात्र भी कुभाग्य-प्रेरित मृत्युद्वारा विनष्ट होते हैं।...परन्तु यह भारतवर्ष तथा ग्रीसमें एकसा आत्मज्ञानशाली समयका पीछेका विचार है जो वीररसके प्राधान्यकालकी प्रबल प्रसन्नताको शोकाच्छन्न करनेके हेतु पीछे जोड़ा गया।"*

यहां उन दलीलोंका उल्लेख करना, जिनके द्वारा इन विद्वानोंने अपने निर्णयोंकी पुष्टि की है—अप्रासङ्गिक नहीं होगा। जैसे कि—

(१) आदि काण्डके १म तथा ३य सर्गमें दो विषय-

* "Both the great Hindu epics.........end in disappointment and sorrow. In the Mahabharata the five victorious brothers abandon the hard-won throne to die one by one in a forlorn pilgrimage to the Himalayas; and in the same way Rama only regains his wife, after all his toils to lose her. It is the same in the later Homeric cycle—the heroes of the Iliad perish by ill-fated deaths.........But in India and Greece alike this is an after-thought of self-conscious time, which has been subsequently added to cast a gloom on the strong cheerfulness of the heroic age."

Academy, Vol. III. No. 43.

सूचियां पाई जाती हैं, जो परस्पर नहीं मिलती हैं और उनमेंसे पहली, प्रथम तथा अन्तिम काण्डका कुछ ज़िक्र नहीं करती।

(२) महाकाव्यके प्रधान अंशसे कपट-निवेशित भाग इस प्रकार अदृढ़रूपसे जुड़ा हुआ है कि उन स्थानोंका पता आसानीसे लग सकता है।

(३) कमसे कम उत्तरकाण्डको तो अवश्य ही बाहर कर देना चाहिये—क्योंकि महाकाव्यकी कथा अपने आख्यानिक सांचेके सदृश प्रायः सुखान्त ही थी।

मैं इन मतोंका समर्थन बिना कुछ घटाये-बढ़ाये नहीं कर सकता। मुझे यह मालूम होता है कि मौलिक आकारमें इस महाकाव्यका अन्त दुःखमय ही था। और अधिकतर सम्भव है कि पृथ्वीकी गोदमें सीताका अन्तर्धान होना ही उसकी पराकाष्ठा थी। अतएव उत्तरकाण्ड मूल-रामायणके कुछ अंशका एक बढ़ाया गया रूप है।*

यदि हम इस प्रकार सोचें कि वाल्मीकिने अपनी कथामें रामकथाके स्थूलरूपका पुनरुल्लेख ठीक उसी प्रकार किया है, जैसा कहा जाता है कि आदि काण्डके प्रथम सर्गमें उन्हें नारद मुनिने कहा है, तो हम अवश्य ही बड़े भारी भ्रममें पड़ेंगे। ऐसा करनेसे हम रामायण-महाकाव्यको और इसके आधारस्वरूप पुरानी आख्यानिक कथाको एक ही मान बैठेंगे।

* ऐतिहासिक विचारके प्रसङ्गमें इस विषयका सविस्तर विवेचन किया गया है।

ऊपर कही हुई दलीलोंकी जहांतक रिआयत हो सकती है, उतनी करनेपर भी मुझे नहीं मालूम होता है कि केवल इसी कारणसे कि विषयोंकी दो सूचियां हैं, जिनमें कई बातोंमें विभिन्नता पाई जाती है और जिनमेंसे प्रथम सूची आदि तथा अन्तके काण्डोंमें वर्णित घटनाओंका उल्लेख नहीं करती, दो पूरे काण्ड कपट-निवेशित कहकर कैसे छोड़ दिये जा सकते। मुझे भय होता है कि ऐसा करना वाल्मीकिके महाकाव्यकी कथाको और नारदसे कहायी गई किसी रामकथाके पुराने रूपको एक ही मानना है। यह टेढ़े रास्तेसे मिथ्या आचरणके सिवाय दूसरे किसी प्रकार नहीं किया जा सकता है। इस कारणसे उत्तर-काण्डको यह कहकर बहिर्गत करना कि महाकाव्यका अन्त नारदकी रामकथाके सदृश सुखमय होना चाहिये, और यह कहना एक ही-सा होगा कि वाल्मीकिका कार्य्य केवल उस कथाके स्थूलरूपकी सरल तथा अविकल प्रत्युत्पत्ति करना ही था, जिसे कि उन्होंने इस देशमें बना बनाया पाया। बिना किसी प्रमाणके ही रामायणकी विवेचना, उसकी शिक्षा तथा अभिप्राय सहित एक महाकाव्यके रूपमें होनी चाहिये, जिसमें यह अपने मूल-कथानकसे, जिसका अभिप्राय बिलकुल दूसरा ही था, भिन्न हो जाय। यदि शुद्ध रूपसे इसकी विवेचना हो सके कि एक महाकाव्यकी प्रारम्भिक सीमा एक विस्मयोत्पादक शिक्षा है, जोकि अपने ढंगपर कथाकी रङ्गसाजी और उसके लक्षणका निर्णय करती है तथा जो ऐसे आख्यानोंसे बनी हुई

है, जो कि अन्योन्य असंलग्न होनेपर भी परस्पर गुथे जानेके कारण संलग्न है, तो रामायणकी शिक्षाद्वारा उपन्यस्त अन्त अवश्य ही दुःखमय था। पुरानी रामकथा, जैसे कि हम महाकाव्यके आदिकाण्ड तथा बौद्ध जातकमें * पाते हैं, अन्य दन्तकथाओं तथा सङ्गीतोंकी तरह जो कि आजकल भी साधारणतः लोकप्रिय हैं, सुखान्त ही थी। महाभारतमें प्राप्त रामकथाओंके साथ इन दोनोंकी परीक्षा सूक्ष्मरूपसे करनेपर वे सब निम्नलिखित दो विभागोंमेंसे किसी भागमें गिने जा सकते हैं। जैसे कि:—

(१) वे, जो "रामको अवतार—एक जातीय नेता—नैतिक विलक्षणताओंका परिष्कृत उदाहरण मानते हैं, इस विभागमें हैं—महाभारतके आदि पर्व तथा दशरथ जातक † की प्रचलित टीकामें वर्णित रामोपाख्यान और रामायण निवेशित नारदकी रामकथा।

(२) वे, जिनका अभिप्राय रामका उदाहरण दिखाकर दुःख और जांचके समयमें भी अपनी स्फूर्ति तथा कर्मबल बनाये रखनेकी आवश्यकता और बुद्धिमत्ता जताना है, इस तरहके हैं,— महाभारतके ३ य पर्वके २७७-२९१ अध्यायमें वर्णित तथा धर्मशास्त्रीय जातक† मूल-ग्रन्थके दशरथ जातकमें कथित राम-कथायें।

---

* बुद्धके पिछले जन्मोंका हाल जातक नामके उपाख्यानोंमें वर्णित है। जातकोंकी गिनती बौद्ध धर्म-ग्रन्थोंमें होती है—अनुवादक।

† दशरथ जातक, नं० ४६१, धर्मशास्त्रीय जातक ग्रन्थसे उद्धृत नीतिके दोहे रामायणके २य काण्डके १०५ वें सर्गकी कविताके अभिन्नरूप नहीं तो सदृश हैं।

रामायणकी रामकथा इन दोनोंमेंसे किसी भी विभागमें नहीं रक्खी जा सकती है; क्योंकि यह निरवलम्ब खड़ी रहकर सर्वत्र एक ही प्रधान विषय, या जैसा कि हम कहते हैं, शिक्षाके लिये है, जोकि इसके सम्वहन करनेवाली कहानीका दुःखान्त होना सूचित करती है।

प्रास्ताविक सर्गमें ऐसा उल्लिखित है कि उस श्लोकमें ही जिसे वाल्मीकिने अकस्मात् मर्माहत होकर उच्चारण किया था, वह शिक्षा है और पीछे उसी श्लोककी शिक्षाके आधारपर वे प्रचलित रामकथाको लेकर उसीको महाकाव्यमें परिणत करने बैठे। इस बारम्बार उद्धृत किये जानेवाले श्लोक * का अनुवाद इस प्रकार है :—

"कभी नहीं यश पा निषाद तू यद्यपि बीते काल अनन्त।
काम-मुग्ध इस क्रौञ्च-युगलमें किया एकका जीवन अन्त।"

वाल्मीकिकी इस भविष्यत् वाणीको लोग पीछेकी बनावट कह सकते हैं; क्योंकि यह कपट-निवेशित (क्षेपक) समझे जानेवाले एक प्रास्ताविक सर्गमें पायी जाती है। परन्तु जैसा कि हमलोग आगे चलकर देखेंगे, बात तो यह है कि केवल यही

---

* मा निषाद प्रतिष्ठान्त्वमगमः शाश्वतीः समाः
यत् क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥

ग्रिफिथ साहब इसे यों लिखते हैं :—

"No fame be thine, for endless time
Because, base out cast, of thy crime
Whose cruel hand was fain to slay
One of his gentle pair at play."

एक स्वर है, जिसे भारतवर्षका यह महाकाव्य बराबर आलाप रहा है; यही एक भाव है जो समूची कहानीमें व्याप्त है।

सत्यतः महाकाव्यकी कथा केवल बन्दियोंकी वर्णित रामकथा नहीं है, वरन इस एक लक्ष्यको सामने रखता हुआ हिन्दुस्तानकी कथाओंके पुञ्जसे निकाला गया तथा परस्पर ग्रथित नारदकी रामकथा तथा अन्यान्य कथाओंका कुशलतापूर्वक कराया गया मधुर मिलाप!

महाकाव्यकी कथा तथा आख्यायिकाओंकी रामकथा एक नहीं है। इसका उल्लेख प्रास्ताविक रूपमें साफ़ साफ़ किया गया है (आदिकाण्डका द्वितीय तथा तृतीय सर्ग)। किसी चालसे यहां इस विषयका उत्तर है कि एकके बदले इसमें दो सूचियां क्यों होनी चाहिये। एक तो आदि काण्डके प्रथम सर्गमें वर्णित नारदकी कथाके लिये और दूसरी उसी काण्डके तृतीय सर्गमें वर्णित वाल्मीकीय कथाके लिये।

दूसरी सूचीमें कितने ही विषय हैं, जिनका वर्णन दूसरे विषयोंके साथ बाल तथा उत्तरकाण्डमें किया गया है और यदि उत्तरकाण्ड ही लिया जाय तो उसमें सूचीका केवल एक ही विषय है। वह है—सीताका वनवास। उसका अन्यान्य विषय-विस्तार सूचीमें उल्लिखित नहीं है। इस सूचीमें सीतावनवासका प्रसङ्ग सैनिकोंकी विदाईके प्रसङ्गके बाद ही है। सैन्योंकी विदाईकी बात लेकर छठे काण्ड (युद्ध-काण्ड) की समाप्ति होती है और यह उत्तरकाण्डके ठीक पहले ही है। परन्तु

आश्चर्यकी बात है कि उत्तरकाण्ड उस कथाके सूत्रको छोड़ देता है। सीता-वनवासका प्रसङ्ग प्रथम ४३ सर्गोंके बाद आता है। इन ४३ सर्गोंमें, जो प्रस्तुत विषयको छोड़ देते हैं, कालचक्र, राक्षसोंकी उत्पत्ति प्रभृति लौकिक तथा विस्मयोत्पादक गहन भावोंसे भरे हुए बाहरी विषयोंका समावेश है। मेरी समझमें यहां मुझे इस बातका विश्वास करनेके यथेष्ट हेतु मिलते हैं कि किसी मौलिक विषयको लेकर ही कल्पना तथा गहनताका इतना बड़ा ठट्टर खड़ा किया गया है।*

मैं इस विषयको यों उपसंहृत करता हूं कि सीता-वनवास तथा उसके परवर्ती वृत्तान्तोंका वर्णन जिन सर्गों या विभागोंमें है उन्हें छोड़ सम्पूर्ण उत्तरकाण्ड कपट-निवेशित है। इसी तरह प्रास्ताविक सर्गोंको, विश्वामित्रपर आश्रित कुछ पौराणिक कथाओंको तथा उन स्थलोंको जहां वाल्मीकिको रामके सम-कालीन ठहरानेकी कोशिश की गयी है, हम अपने विचारसे बहिर्भूत कर सकते हैं। कपट-निवेशनका प्रश्न रामायणकी वर्तमान शाखाओंकी तुलना करनेपर आंशिक रूपसे समाधान पा सकता है। जहां कहीं कपट-निवेश मिले उसे किसी अज्ञात भारतवर्षीय कविकी करतूत ही समझना चाहिये। इस मूल काव्यका वर्तमान रूपमें विस्तार करनेके भागी कुछ पाठकगण भी हैं,जिन्होंने अपने सङ्गीतोंको महाकाव्यके साथ मिला दिया है।

---

* इस विषयका सविस्तर विवरण ऐतिहासिक विचारके प्रसङ्गमें किया गया है।

इन पीछेके जुड़े हुए भागोंका भी अपना मूल्य तथा ऐतिहासिक महत्व हैं।* परन्तु इस कपट-निवेशनकी समस्या तबतक पूरे तौरसे हल नहीं की जा सकती है, जबतक हम खुद वाल्मीकिके विषयमें अच्छी तरह जाँच नहीं कर लें। इसलिये अब यह प्रश्न है कि "वाल्मीकि कौन और क्या थे ?"

आचार्य विलसनने अपने Specimen of the Hindu Theatre (हिन्दू-नाट्यशालाओंका नमूना) के प्रथम भागके ३१३ वें पृष्ठमें वाल्मीकिके विषयमें निम्नलिखित बातोंका पता लगाया है :—

वाल्मीकि वरुणके पुत्र थे। वरुण जल-विभागके अधिकारी थे और उनका दूसरा नाम प्रचेतस भी था। अध्यात्म-रामायणके अनुसार यद्यपि ये कवि जन्मसे तो ब्राह्मण थे, परन्तु जङ्गली मनुष्यों तथा डाकुओंसे सहवास रखते थे। एक समय इन्होंने सप्तर्षियोंपर आक्रमण किया था। उन लोगोंने इस निन्दित कर्मपर आपत्ति की और वे सफल-मनोरथ हुए। उन लोगोंने उन्हें "मरा-मरा" अर्थात् राम मन्त्रको उलटा जपनेकी शिक्षा दी। वे हजारों वर्षोंतक अचल भावसे उसे मनही मन जपते रहे। जब वे ऋषिगण फिर लौटकर आये तब उन्हें वहीं वल्मीकों (दीमकों) की भींड़के रूपमें पाया। इसी कारणसे उनका नाम वाल्मीकि हुआ।

वाल्मीकिके विषयमें प्रचलित कथा भी इसी प्रकार है।

* इस विषयका पूरा विवरण ऐतिहासिक विचारके प्रसङ्गमें किया गया है।

उसमें अन्तर केवल इतना ही है कि उसके अनुसार वाल्मीकिका मत-परिवर्तन सप्तर्षियोंके द्वारा नहीं,नारदके द्वारा ही किया गया। अतः प्रचलित कथा तथा योगवाशिष्ठ रामायण, वाल्मीकिको एक डाकूसे एक ऋषि होना दिखाकर केवल रामनामकी महिमा तथा आनुशासनिक प्रभावको बखानते हैं। वे उनके पहलेका नाम रत्नाकर (जवाहिरोंकी खान) से यह मानते हैं कि डाकुओं तथा अत्याचारियोंके कठोर हृदयमें भी आध्यात्मिक शक्तियाँ निश्चेष्ट भावसे रहती हैं और सद्गुरुके समीचीन उपदेशसे आत्मा सदसद् विचार-शक्तिके रूपमें जगायी जा सकती है। उनका यह भी कथन है कि पूरे तौरसे आत्माका परिवर्तन श्रद्धा-की मुक्तिदायिनी शक्ति द्वारा ही होना संभव है। भगवान्‌के राम रामरूपी मधुर नामसे ही पापकी शिला पिघल सकती है। वल्मीक अर्थात् दीमककी भींड़से वाल्मीकि नामकी काल्पनिक उत्पत्ति बतानेका उद्देश्य ऋषिको घोर तपस्यापर जोर देना ही है।

बाल तथा उत्तरकाण्डमें जिन्हें हम ससंवृति क्षेपक बता चुके हैं उनके जीवनका अपेक्षाकृत पुराना तथा कम अतिरञ्जित वर्णन पाया जाता है। प्रथम काण्डके प्रास्ताविक सर्गोंमें और उत्तरकाण्डके उन सर्गोंमें, जिनमें राम-सीताकी कथाका सिल-सिला सम्बद्ध किया गया है हम स्पष्ट रीतिसे देखते हैं कि वाल्मीकिको रामके समकालीन ठहरानेकी चेष्टा जान बूझकर की गयी है, क्योंकि उनके महाकाव्यका रामके वनवाससे लौट

आनेके कुछ ही दिन बाद समाप्त होना उल्लिखित है। परन्तु यही एक बात है जो आधुनिक भारतवर्षीय लोक-कथाको पुराने लेखोंसे भिन्न बताती है। खासकर बङ्गालमें तो यह प्रचलित है कि रामकी उत्पत्तिसे ६०००० वर्ष पूर्वही रामायणकी रचना हुई। "राम ना होते रामायण" (रामके बिना रामायण) यह असम्बद्ध कल्पनाकी व्यङ्ग्यात्मक लोकोक्ति है। यद्यपि बाल तथा उत्तरकाण्डके वर्णन एक दूसरेको पूरा करते हैं तथा आंशिक रूपसे मिलते हैं,तथापि उनके अभिप्रायमें भिन्नता पायी जाती है। बालकाण्डका सम्बन्ध विशेषकर महाकाव्यकी उत्पत्तिसे है और उत्तरकाण्डका सारे संसारमें उसके पठन पाठनसे। मैं अब दोनों काण्डोंसे वाल्मीकिके विषयमें उपलब्ध मुख्य मुख्य बातोंको संक्षिप्तरूपमें लिखता हूं —

पहले बालकाण्डको लीजिये :—

वाल्मीकिका परिचय एक प्रतिभाशाली ऋषिके रूपमें होता है जो भारद्वाज तथा अन्याय शिष्योंके साथ अयोध्याके समीप तमसा तथा गङ्गाकी विविक्त उपत्यकामें अवस्थित एक मनोरम आश्रममें एकान्त वास करते थे। उन्हें नारदसे रामकथा-का स्थूल वर्णन मिला जिसमें रामका निरूपण विचार, बुद्धि और महानुभावताके समस्त गुणोंसे अलंकृत एक आदर्श मनुष्यके जैसा किया गया है। तमसामें स्नान करनेके बाद उनकी नज़र नज़दीकके वनमें परस्पर विहार करते हुए क्रौञ्चकी एक जोड़ीपर पड़ी। अचानक किसी व्याधेने तीरसे नर-पक्षीको मार डाला।

क्रौञ्ची अपने सहचरसे दुःखमय वियोग होनेके कारण बहुत रोयी और व्याकुल हो उठी। इस शोकजनक दृश्यसे वाल्मीकिका मन दहल गया और व्याधेके पापकर्मसे उनका क्रोध धधक उठा। अतिशय सहानुभूति तथा निर्वेद भावोंसे युगपत् प्रेरित होकर उनके मुंहसे एकाएक अनायास छन्दोबद्ध वाणीमें व्याधेके प्रति शाप निकल पड़ा। अपने आश्रममें लौट आनेपर उन्होंने इस करुणाजनक घटनापर विचार किया और उस श्लोकका मनन किया, जिसने उनपर किये गये दुःखके आघातको प्रकट किया था। ऐसे महत्त्वके समयमें कविताकी प्रतिभा उनके मनमें उदित हुई।

सत्यके प्रचारके लिये उत्तेजित करता हुआ तथा रामकथाको इसका उपयुक्त वाहक बताता हुआ देव-ज्ञान उन्हें खास ब्रह्मासे ही प्राप्त हुआ। अतएव वे रामायणकी शिक्षाप्रद कथाको पुराने धर्मपरायण ऋषियों द्वारा कही गयी अनेक कथाओंसे मिलाकर रामकथा बिनने लगे। जब अपने ग्रन्थको उन्होंने समाप्त किया तब उन्हें उत्सुकता हुई कि संसारभरमें उसका पठन-पाठन हो। ऐसे समयमें यमज कुश और लव जो उनके आश्रममें रहते थे, उनके समीप अकस्मात् आये। सुस्वर-समन्वित इन नृप-वंशीय युगल मूर्तियोंमें उन्होंने आदि कथा-गायकोंको पाया, जिन्हें ऐसी जगहोंमें अपने वीर सङ्गीत गानेका भार सौंपा—

"ऋषिगण जहां इकट्ठे होते, ऐसी शान्ति-सुखद छायामें।
सज्जनका हो जहां बसेरा, दीन-सदन या राजभवनमें॥"*

कुशीलवने अपने भारको इस प्रकार निवाहा, जिससे उनके शिक्षादायक गुरुको सन्तोष मिले। इस अद्भुत वीर सङ्गीतने सबको द्रवित किया। और जहां ही गाया गया, स्वयं रामके दरबारतकमें, पसन्द किया गया।

अब उत्तरकाण्डको लीजिये—परित्यक्ता सीताको वाल्मीकिने पितृ-स्नेह-युक्त हो अपने आश्रमके समीप, जहां वह निःसहाय रूपमें वनवासिता हुई थी, स्वागत किया। वहां सीताने यमज राजकुमार कुश और लवको जना। वे किसी विशेष भाग्यसे उन (वाल्मीकि) के पवित्र प्रयत्न द्वारा लालित-पालित हुए। वे दोनों रामायण गान करनेको सिखाये गये। जब रामने अश्वमेधयज्ञ किया तब वाल्मीकि कविताके इन पढ़नेवालोंको साथ लेकर अयोध्या गये; जहां इन नृपवंशीय गवैयोंने उस विचित्र भाग्यके विषयमें, जिसकी मारी उनकी माता बिचारी सीता थी, गाकर राजसभाके आंखोंसे आंसू टपका दिये।

बस, रामायणके इन दोनों काण्डोंसे वाल्मीकिके विषयमें इतनी ही बातोंका पता लगता है। और हमें जितनी जानकारी हुई है, सिर्फ एक ही पंक्तिमें संक्षिप्त की जा सकती है। वह

* "………in tranquil shades where sages throng.
Where the good resort, in lowly home and Royal Court."

यह कि, वाल्मीकि एक ब्राह्मण थे, एक तपस्वी थे, एक महात्मा थे, एक योगी थे और सबसे बढ़कर एक कवि थे। वाल्मीकिके जीवनचरित्रके ये ही मुख्य विषय हैं। इन पूर्वोक्त विषयोंके कुछ भी अर्थ नहीं, यदि उनके आभ्यन्तरिक जीवन अर्थात् युगान्तर करनेवाले ग्रन्थमें प्रकाशित उनके मन और विचारके इतिहासके साथ-साथ इन विषयोंका अनुशीलन नहीं किया जाय।

यदि केवल उनके काव्यसे ही हम उनके अपने व्यक्तिगत इतिहासकी विवेचना करें तो हम प्रत्येक वर्णनमें अनिश्चयमें लिप्त हो जायंगे। परन्तु इसमें एक विषय है, जो अवश्य ही निश्चितरूपसे माना जा सकता है। वह यह है कि वे अपने सद्गुण तथा ससीमताको लिये हुए एक मनुष्यमात्र थे!

मालूम होता है कि वाल्मीकिके कालमें यह लौकिक विश्वास कि राम एक अवतार थे, प्रचलित हो रहा था और पाठकोंके द्वारा यह विश्वास अत्यन्त वेगसे धार्मिक रूप धारण कर रहा था। रामको देवगुण-सम्पन्न करनेवाली वर्तमान गाथाओंके अनिवार्य्य प्रभावके होते हुए भी वाल्मीकि लौकिक प्रथाके ऐसे मुनियोंमें थे, जिनकी दृष्टि मुख्यतया मानुषिक हो। वे रामको एक दैवी अवतारकी अपेक्षा आदर्श पुरुष निरूपण करनेके हेतु अधिक उत्सुक थे। किसी तरह, उन्होंने विशेषकर रामके व्यक्तित्वके मानुषिक भागपर ही जोर दिया है। जहां-कहीं उन्हें रामके चरित्रको चित्रण करना पड़ा, वे उन्हें प्राकृतिक शक्तिके सामर्थ्यवान अथवा प्रकृतिमें उच्चतम

पदार्थसे तुलना कर अपने पक्षकी रक्षा करनेमें सावधान रहे, न कि वे उन्हें उनसे अभिन्न मानकर। बात तो यह है कि उन्होंने ऐसे स्थलोंमें जहां देखिये तहां अव्यय "इव" का प्रयोग किया है जिसका अर्थ "सदृश" होता है। इसका कुछ उदाहरण लीजिये, जैसे कि द्वितीय काण्डके प्रथम सर्गमें राम चारों भाई, राजा दशरथसे उद्भूत और अपने प्रिय पितामें चारों भुजाओंके सदृश आसक्त कहे गये हैं। पाठकोंके हाथमें यह कल्पना बदल गयी। उन लोगोंने दशरथके पुत्रोंका चित्र भिन्न-भिन्न अवतार ग्रहण किये हुए विष्णुके तत्वके चारों भागके रूपमें खींचा है। उसी सर्गमें राम मनुष्योंके बीच स्वयंभू भगवानके सदृश बताये गये हैं:—

"स्वयम्भूरिव भूतानां बभूव गुणवत्तरः।"

फिर राम बुद्धिमत्तामें बृहस्पतिके जैसे, बलमें शचीपतिके समान कहे गये हैं। वे अपने धर्मोंके बीच इस प्रकार चमकते थे, जैसे सूर्य्य अपनी किरणोंके साथ तेज लिये चमकता है। यथार्थमें वे समस्त धर्मोंसे युक्त होकर इस प्रकार चमकते थे जैसे विश्वके नाथ हों और उन्हींको यह संसार अपना प्रभु माने—

"लोकनाथोपमं नाथमकाम्यन्मेदिनी" इत्यादि।

इसी तरह इसी सर्गमें भरत और शत्रुघ्नकी समता महेन्द्र और वरुणसे की गई है। यह बात निर्दिष्ट की जा सकती है कि रामायणके बनारसी पाठमें बम्बई पाठका यह श्लोक नहीं

है जिसमें सनातन विष्णु रावणके विनाश करनेके हेतु पीड़ित देवताओंकी प्रार्थनाके उत्तरमें इस मानुषिक संसारमें अवतार ग्रहण करनेकी प्रतिज्ञा करते हैं। वास्तवमें हमें छठे काण्डके ११७ वें सर्गमें बम्बई पाठवाले वाल्मीकीयसे इससे भी साफ उक्ति मिलती है; जिससे यह सिद्ध होता है कि वे रामको एक मनुष्य मानते थे; क्योंकि उन ब्राह्मणोंको जवाब देते हुए जो उन्हें उनको देवी उत्पत्ति और विश्वके नाथके रूपमें पहलेकी स्थितिके विषयमें चेताने आये थे, रामके द्वारा कहलाते हैं—

"आत्मानं मानुषं मन्ये रामं दशरथात्मजम्।
सोऽहं यश्च यतश्चाहं भगवंस्तद्ब्रवीतु मे।"

अर्थात् "मैं अपनेको मनुष्य, दशरथ-सुत राम मानता हूं। मैं यथार्थमें कौन हूं, और किससे हुआ हूं, हे भगवन् आप मुझे केवल इतना ही कहिये।"

अतः जान पड़ता है कि वाल्मीकिका कर्तव्य इस नैतिक सम्पन्नताको दिखलाना था, जिसे मनुष्य पा सकता है। अथवा मनुष्य जिस नैतिक तथा सामाजिक आदर्शके पीछे केवल मानुषिक पराक्रमसे ही लग सकता है। स्वयं वाल्मीकि एक मनुष्य थे, स्वभावतः मनुष्यहीके ऐसे, विशेषतया चरित्र-सम्पन्न मनुष्यके ऐसे उन्होंने वस्तुओंकी पर्य्यालोचना की है। केवल मनुष्य ही नहीं, बल्कि एक नीतियुक्त मनुष्य होनेमें कौन ऐसा तत्त्व है, जिसका अनुसरण किया जाय, कौन कर्त्तव्य तथा भार हैं, जिनकी पूर्ति की जाय? वाल्मीकिका उत्तर है कि

उस व्यक्तिको सम्पूर्णरूपसे मनुष्य होना चाहिये, जिसका विचार उसके अपने गतपारम्पार्य्य, वर्तमान शिक्षा, पारिवारिक सम्बन्ध, सामाजिक परिवेष्टन तथा सार्वजनिक कर्त्तव्य और धर्मसे सम्बन्ध द्वारा हो सकता है। वे काल तथा अदृष्टके अधिकारमें कदापि न रहें। पशुओंसे तथा सभ्यताकी निम्न श्रेणीमें अवस्थित मनुष्योंसे उसे भिन्न करनेके हेतु वह चरित्रकी एक कक्षापर विद्यमान रहा करे अर्थात् आत्मवान् हो, उसमें अपने ऊपर अधिकार जमानेकी सामर्थ्य हो। धर्मकी यह कक्षा जिसको उसे मानना है, ऐसी होनी चाहिये कि वह अन्तःकरणके साधारण आदेशके, नागरिक समाजके निश्चित नियमोंके तथा धर्मके उच्च तत्त्वोंके विरुद्ध न हो। किसी भी अवस्थामें क्यों न हो, उसे इस नियमके अनुसार कार्य्य करना होगा, इसकी रक्षा करनी होगी और इस नियम हीके लिये मरना होगा। ऋषियोंके धार्मिक जीवनपर अभिघात पहुंचानेवाले दैत्योंके वधके वर्णनसे वाल्मीकि यही सब दिखाना चाहते हैं। अरण्यकाण्डमें सूर्पनखाका आख्यान भी वाल्मीकिके ऐसे मतका ही समर्थन करता है। सूपके ऐसे नखवाली रावणकी बहन सूर्पनखाने अपनी पाशविक अन्तःप्रवृत्तिसे प्रेरित होकर अपने यन्योचित कपट तथा मायासे सीताके अधिकारपर आक्रमण करनेका साहस किया था और उसीके बलसे यह आशा रखती थी कि उनके स्वामी सदा उसपर आसक्त रहेंगे और आर्य्य-सभ्यतापर अपने बर्बर आदर्शका प्रभाव फैला-

देगी। सूर्पनखाने रामसे उनकी पत्नीके सामने ही प्रीतिकी याचना की और उनके छोटे भाई लक्ष्मणसे प्रेमप्रसाद पानेके लिये कहे जानेपर वह उनके पास दौड़ी गयी। उन्होंने फिर उसे रामके पास भेज दिया और वह पुनः नारियोंकी उचित सलज्जता और सङ्कोचकी कुछ परवा न कर रामके पास लौट आयी। यह कहे जानेपर भी कि वह विवाहित थे, अतएव उसको अनुगृहीत नहीं कर सकते थे, वह अपने जङ्गली सौन्दर्य्यकी प्रशंसा कर रामका अनुनय करती ही रही। जब उसके सभी सादर विनय निष्फल हुए तब उसने भय दिखलाना आरम्भ किया। परन्तु तिसपर भी वह तिरस्कृता हुई और जब वह अपनी दानवी चण्डता तथा अनार्य्योचित हिंसा लेकर सीतापर आ गिरी तब रामके द्वारा निम्नलिखित आज्ञा कहलायी गयीः—

"करना नहीं चाहिये हमको, धृष्ट जीवसे हास्य कभी।
जिसका वंश वन्य होवे औ, चित्तवृत्ति हो क्रोधमयी॥
सोचो, लक्ष्मण सोच जरा लो, कैसी होकर मृतप्राया।
मेरी प्यारी सीताने फिर, प्राण वायु चलता पाया॥
दुष्ट जीव इस भयङ्करीको, जाने कभी नहीं देना।
उसकी आकृति नष्ट करे जो, इस प्रकारके चिन्ह बिना॥
अय नरेन्द्र, इस घोर राक्षसीपर, तुम करो वार अपना।
दुष्टाकृतिवाली है जो यह, विकलाङ्गी औ है मलिना॥" *

* "Ne'er should we jest with creatures rude,
Of Savage race and wrathful mood.
Think Lakshman, think how nearly slain

यद्यपि वाल्मीकिने सच्चरित्रता तथा कर्तव्यकी कक्षा ऊंची कर सभ्यताकी श्रेणीको बढ़ाया है तथा सभ्य मनुष्यको प्राकृतिक अवस्थापन्न पशु तथा वन्य मनुष्यसे निपुणतापूर्वक व्यतिरेक किया है, तथापि वे स्वाभाविक सरलताके अनुसार जीवन व्यतीत करनेको आवश्यकता हृदयङ्गम करानेमें कभी नहीं चूके और यह सरलता ही वह प्रकाशन है जो कविके जीवनकी विशेषता निरूपण करती है तथा उनके महाकाव्यको सराहनेकी कुंजी दे सकती है। आचरणकी सरलता, व्यवहारकी सरलता, शब्द, भाषा, छन्द, तथा अन्यान्य अवशिष्ट वस्तुओंकी सरलतासे मिले हुए विचारकी सरलता। पुरुष हो या स्त्री, उच्च स्थानापन्न मनुष्यके चरित्रमें सौन्दर्य बढ़ानेकी यही एक वस्तु है—प्राकृतिक सरलता, अर्थात् वह सरलता जिसे लेकर हम उत्पन्न हुए—राम और सीताके चरित्रमें उन्होंने कठोरता और सरलताके रूपमें व्यतिरेक किये गये जीवनके दो सम्बन्धोंको साथ-साथ रक्खा है। इसमेंसे एक तो सार्वजनिक कर्त्तव्यके गुरुभारसे परिपूर्ण है और दूसरा स्वामीपर अनुशासक प्रभाव पहुंचानेवाला और पुरुषके गार्हस्थ्य सुखको आश्रय देनेवाली सुकुमारी पत्नीके प्रयत्नसे मधुर। उसी तरह उनके अपने

My dear Videhan breathes again.
Let not the hideous wretch escape
Without a mark to mar her shape.
Strike, lord of men, the monstrous fiend
Deformed, and foul, and evil-miened."

जीवनमें भी हम ऋषियोंकी कठोर तपस्याको प्राकृतिक सरलता से,—जैसाकि अरण्यकाण्डमें मुनि-जीवनके परिस्फुट विवरणसे स्पष्ट होता है—व्यतिरेक किया गया तथा मिलाया गया देखते हैं।

धार्मिक जीवनकी कठोरता और प्राकृतिक सरलताका व्यतिरेक और मिलाव प्रत्यक्षरूपसे विरुद्ध वाक्य है; परन्तु विनिमयकी कठोर पद्धति किस प्रकार कोमल भावोंके तथा प्रकृतिके सरल सौन्दर्यके साथ-साथ रक्खी जा सकती है वह अगस्त्याश्रमको देखकर रामने जो कहा उससे अच्छी तरह उदाहृत हो सकती है :—

"कैसे कोमल पत्र पेड़के, कैसे खग-मृग शान्त दीखते।
शुभ्र सदनको देख पायंगे, शीघ्र शान्त चित उस महर्षिके।
कर्म्म किये जो सत् अगस्त्यने, यश महान फैलाया जगमें।
उनका शान्त निवास देखता, थके पथिकका जो दुख हरता।
बादल श्वेत जहां बनते हैं तलकी वह्नि-शिखासे।
वल्कल वसन जहां हैं रक्खे सहित बहुत मालाके॥
वन्य वस्तु सब भद्र बनायी गयी इकट्ठी होती।
पक्षी उच्च स्वरोंमें और फिर, बैठे कलरव करते।*

* "How soft the leaves of every tree,
How tame each bird and beast we see!
Soon the fair home shall we behold
Of that great hermit tranquil-souled.
The deed the good Agastya wrought

यह स्वाभाविक है कि ये, नगर-जीवनकी चहलपहलसे एक वनस्थ आश्रमके शान्त प्रान्तमें आये हुए मनुष्यको अच्छे लगें। फिर जब सीता और राम पञ्चवटी पहुंचे, तब उसकी शोभासे आकर्षित होकर प्रकृतिकी सरला बाला सीता अपनी स्वाभाविक बुद्धिके अनुरूप यह बोल उठीं:—

"देखोजी, तुम देखो सुन्दर चिकने इस वन-पथको।
फूले तरुवर छाया करने, को घेरे हैं जिसको॥
प्यारे लक्ष्मण, निश्चय तुम इस सुन्दर थलपर करना।
खड़ी एक कुटिया सुरम्य, हो जहां हमारा रहना॥
सघन पक्षसम उस झाड़ीके पार नजर जो आती।
वह सरोज शोभित सरसी है कैसी चमक दिखाती॥
सूर्योपम शोभा धारण कर जहां फूल बहु भाते।
नीचेकी तरङ्गसे मिलकर नव सुगन्ध फैलाते॥
मुनि अगस्त्यके वचन आज हम हैं सबही सच पाती।
जो उनने शोभा वर्णन की, यहां दृष्टिमें आती॥

High fame throughout the world has brought:
I see, I see his calm retreat
That balms the pain of weary feet.
Where white clouds rise from flames beneath,
Where bark-coats lie with many a wreath,
Where sylvan things, made gentle, throng,
And every bird is loud in song."

रम्य पवित्र तपोवन है यह जहां विहंग मृग सारे।
इनके संग कटेंगे सुखसे, लक्ष्मण, समय हमारे॥" *

हमारे मनमें ऐसा ही होता है कि जैसे वाल्मीकि अपनी कल्याणी सीताके द्वारा उन वाक्योंको कहते हैं, जो वे स्वयं भारतीय वनोंकी शोभा देखकर बोलते। यथार्थतः ये वही हैं, जिनमें इतनी सरलता है, जो प्रकृति-समुदायके साथ मिले रहनेपर मनुष्योंकी आत्माको शुद्धता देख सकते हैं। प्रथम काण्डके दूसरे सर्गमें वाल्मीकि अपने शिष्य भारद्वाजको कहते निरूपण किये गये हैं:

---

* " See, see this smooth and lovely glade
Which flowering trees encircling shade:
Do thou, beloved Lakshaman rear
A pleasant cot to lodge us here.
I see beyond that feathery brake
The gleaming of a lilied lake,
Where flowers in sun-like glory throw
Fresh odours from the wave below.
Agastya's words now find we true,
He told the charms which here we view.
....

The spot is pure and pleasant: here
Are multitudes of bird and deer .
O ! Lakshman, with our father's friend
What happy hours we here shall spend !"

"देखो, प्यारे शिष्य, ऐसे सुन्दर दृश्यको।
गाध सरित यह आज,समतल उज्ज्वल शुद्ध जो॥
नहीं कहीं पर छांह, करतीं शोभा नाश है।
निर्मल यह बेदाग, सज्जन हृदय-समान है।।"*

आदिकाण्डमें रहनेके कारण यह उक्ति वास्तवमें वाल्मीकिके द्वारा नहीं कही गयी हो, ऐसा भी हो सकता है, तोभी यह अवश्य मानना होगा कि पाठकोंने वाल्मीकिको पूरे तौरसे समझ लिया था और युक्तरूपसे उनपर इन गुणोंको आरोपित (निक्षिप्त) किया, क्योंकि यथार्थतः उन्हींका तमसाके जलके सदृश स्वच्छ सज्जनका हृदय था। सत्यतः प्रकृतिके वरदान — सरलतासे वही सम्पन्न थे, जिससे उन्हें भगवत्सम्बन्धी विषयोंका स्पष्ट बोध होता था।

वाल्मीकिके बालकालके वृत्तान्त रामायणमें विशेषरूपसे नहीं हैं। परन्तु कौशल और उसकी राजधानी अयोध्या तथा उसके उपकारी शासक, उसके बुद्धिमान मन्त्रिमण्डल, सुखी प्रजा, अमोघ सम्पत्ति आदिके भक्तिपूर्ण तथा सूक्ष्म विवरणसे यह अनुमान किया जा सकता है कि वे उसी देशके वासी थे, जिसको वे प्रचुरतापूर्वक चित्रण करनेसे कभी नहीं थके। उदाहरण-स्वरूप यथाः—

* "See pupil dear, this lovely sight,
The smooth-floored shallow, pure and bright
With not a speck or shade to mar
And clear as good men's bosoms are."

"सरयूनदी-किनारे, आकार दीर्घ धारे।
कोशल-प्रदेश है वह, सुखपूर्ण देश है वह॥
समभूमि है वहांपर, उपजाउ और विस्तर।
पशु-पक्षि-वृन्दयुत है, धनधान्य-पूर्ण वह है॥
निज कीर्तिसे अयोध्या, यह ख्यात राजधानी।
युग अन्यकी बनी है, मनुदेवकी रची है॥

× × ×

उच्चाशय उन्नत नृप दशरथ।
थे नगरीके रक्षक शासक॥

+ + + +

उच्चासन पाकर भारत-सी,सर्वोपरि इनकी नगरी थी।
जिसमें थे प्रासाद उच्चतम आसमानपर दखल जमाये॥
घर शतरञ्ज समान मनोहर वेढब नहीं एक भी था घर।
चित्रित चारु सभी उज्ज्वल थे, नगरीका सौन्दर्य बढ़ाते॥*

---

* " On Saraju's bank, of ample size,
The happy realm of Kosal lies,
With fertile length of fair champaigne
And flocks and herds and wealth of grain.
There, famous in her old renown,
Ayodhya stands the royal town.
In bygone ages built and planned
By sainted Manu's princely hand.
....

यथासम्भव ऐसा मालूम पड़ता है कि कोशलहीमें उन्होंने अपने जीवनका अधिकतर भाग विताया। वे अवश्य ही कुछ अन्य देशोंकी जानकारी भी रखते थे। यथा, उत्तरमें विदेह, पूर्वमें अंग, मगध और काशी, पश्चिमोत्तर प्रदेशमें अश्वपति केकयका दूरवर्ती राज्य और ऐसे दूसरे-दूसरे देश, जिनसे कौशलको मित्रता थी और जो वैवाहिक सम्बन्धसे आवद्ध थे। कि इसी ढंगसे यह पता लग जाता है कि वे अयोध्यासे गिरिव्रजकी राजधानी राजगृह जानेके दो रास्तोंसे अच्छी तरह परिचित थे। इनके विषयमें लिखते हुए आचार्य्य लैसेन अपने Indische alter thumskunde, Vol. II, p. 524 (भारतवर्षकी प्राचीन सभ्यता) में लिखते हैं कि जिस रास्तेसे अयोध्यासे दूत भेजे गये थे, वह उस रास्तेसे शीघ्रतर पहुंचानेवाला था, जिससे राजकुमार भरत अपने मामा अश्वपति केकयके राज्य (जो पञ्जाबमें था)से लौटे थे। यद्यपि रामायणके उपलब्धपाठमें उस रास्तेके मुख्य मुख्य ठहरावोंकी गिनतीमें कुछ अदल-बदल है तथापि वाल्मीकिके काव्यमें उनका जैसा सविस्तर

King Dasarath, lofty souled
That City guarded and controlled.
....
As royal India, throned on high
Rules his fair City in the sky.
She seems a painted City, fair,
With chess-board line and even square."
(BK. I. Canto V.!)

विवरण हम पाते हैं,वैसा किसी ऐसे मनुष्यसे किया जाना असम्भव है जो उनसे अच्छी तरह परिचित न हो। प्रायः वे बहुत दिनोंतक अयोध्याके राजभवनमें अमात्यपदपर रहे थे और न्यायाध्यक्ष तथा न्यायकर्ताके महत्वपूर्ण कार्योंको करते थे। जो हो, हमें रामायणसे वाल्मीकिकी, मन्त्रियों तथा राजकर्मचारियोंके गुरुतर कर्तव्योंकी पूरी जानकारीका ज्ञान जो होता है, उससे दूसरा कोई अनुमान नहीं किया जा सकता है। हमारे अनुभवका समर्थन करनेके लिये और यह प्रमाण है कि उन्होंने राजा दशरथके मन्त्रियोंमें वशिष्ठ, वामदेव, विजय, जयन्त, धृष्टि, सिद्धार्थ, अर्थसाधक, धर्मपाल, अशोक, जावालि और सुमन्त्र प्रभृति ऐसे ऋषियों और महात्माओंको निरूपित किया है, जिनके मतोंका भारतवर्षके नैतिक, धर्मशास्त्रीय तथा राजनैतिक ग्रन्थोंमें वैध होना उचित है।

रामायण राजाके कर्त्तव्योंके वर्णनसे परिपूर्ण है और वे वृहस्पतिकी शिक्षाओंको याद दिलाती हैं। उनके सम्प्रदायका मत, उनके नामपर प्रसिद्ध सूत्र, जिसका उल्लेख महाभारत तथा कौटिल्य अर्थशास्त्रमें है, अब भी मौजूद हैं। मैं यहां उन पंक्तियोंकी बात कहता हूं, जिनमें वाल्मीकिने कहा है कि राजाओंको भाग्य और कालकी अवहेलना कर आत्मवान् होना चाहिये और केवल प्रजाके ऐहिक तथा धार्मिक हितको लक्ष्य करके ही अपने कर्त्तव्योंका पालन करना चाहिये। यदि यह नहीं भी माना जाय कि वे मन्त्री या न्यायाध्यक्षपदके अधिकारी थे तथापि यह

अस्वीकार नहीं किया जा सकता है कि वे स्मृति-सम्बन्धीय विचार तथा शासनकालके ज्ञानसे सम्पन्न एक नागरिक थे। इसका प्रमाण हमें रामायणमें व्याप्त जो प्रधान उपदेश है उसमें मिलता है, और वह अपनी सीमासे बढ़ाये गये तथा धर्मार्थ उपयोग किये गये न्यायकी स्मृति-शोधित धारणाके सिवाय और कुछ नहीं है। "मा निषाद" शीर्षक श्लोक, जो महाकाव्यका प्रारम्भिक स्थान है—यदि वह मेरी समझमें ठीक आता हो तो—वह यही शिक्षा देता है कि हमें दूसरोंके अधिकारपर हस्तक्षेप करनेका कोई अधिकार नहीं है। कितना ही क्षुद्र वह क्यों न हो, अपनी अपनी सीमामें न्यायोचित रूपसे आनन्द उपभोग करे तथा जो कोई इस नियमका उल्लंघन करे वह नीच चांडालके ऐसा घृणित समझा जाय और कानूनन दण्डनीय हो। अपने माता-पिताकी पिपासा शान्त करनेके लिये पानी लानेके हेतु आये हुए अन्ध-मुनिके बालक (श्रवण) को, घड़ेमें जल भरनेका शब्द हाथीका नाद मानकर राजा दशरथने बाण मारा। यद्यपि यह पापकर्म्म राजाने जानकर नहीं किया था, तथापि पुत्र-वियोगके शोकसे बिलखते हुए मातापिताने राजाको शाप दिया कि उन्हें भी यही दुःख भोगना पड़े।* इस घटनापूर्ण

---

* रामायण द्वितीय काण्ड ६३ सर्ग। यहाँ नं० ५४० सामजातकके सामकी कथाके अनुरूपही यह कथा है। केवल राजा, देश और नदियोंके नाम भिन्न हैं। रामायणकी कवितासे जातककी कविताकी तुलना कीजिये।

शापको वाल्मीकि जिस दलीलके द्वारा समञ्जस करते हैं, वह यही है कि दशरथने एक अन्धपरिवारके सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करनेके अधिकारमें बाधा डाली और उसके फलको सहन किया। इसी तरह सूर्पनखाको सजा मिली, क्योंकि उसने रामको अपने साथ शादी करनेका प्रलोभन देनेमें सीताके दाम्पत्य अधिकारपर हस्तक्षेप किया था। इसी तरह रावण अपने परिवार तथा परिजनके सहित सत्यानाश हो गया, क्योंकि उसने उन्मत्ततामें आकर उस दैवी अधिकारको भङ्ग किया था, जिसके अनुसार इस वनवासित राजदम्पतिने दण्डक वनमें रहना चाहा था। इसका सबूत कि वाल्मीकिका दृष्टिपथ ब्राह्मण और स्मृतिके अनुसार है, हमें इस बातसे मिलता है कि अहिंसा प्रभृति दश कुशल कर्म्मकी शिक्षा रखते हुए भी वे अनिवार्य्य अवस्थामें हत्याको उपयुक्त बताते थे। उदाहरणार्थ अगस्त्यको लीजिये (३य काण्ड, आठवां सर्ग)—

इन्होंने आततायीका भक्षण किया और उसके भाई वातापीको मारा। यद्यपि ऐसा करना सब जीवोंको सहानुभूतिकी दृष्टिसे देखनेवाले मुनि-जीवनके बिलकुल प्रतिकूल था। यहां वाल्मीकि, बौद्ध और जैनमतावलम्बियोंसे, जो किसी बहानेसे भी हत्याकर्म्म करनेकी इजाजत नहीं देते थे, सहमत नहीं थे। अतः वाल्मीकि विना चिढ़ाये जानेपर क्रोध करनेको ही हिंसा मानते थे। (३य काण्ड, ९ वां सर्ग, श्लोक ४)। इस सर्गमें सीताके मुंहसे जो वाक्य कहलाये गये हैं वे, अहिंसा शब्दसे

क्या तात्पर्य्य था, उसे प्रकट कर सकते हैं। यह सुनकर कि रामने ऋषियोंके शान्तिमय जीवनमें बराबर विघ्न डालनेवाले और सदैव उन्हें भय देनेवाले राक्षसोंकी हत्या करनेका प्रण किया है सीता अपने स्वामीको इस प्रकार निवृत्त करनेकी चेष्टा करती हैं :—

करो नहीं ऐसी इच्छा तुम धनुष बाण कर लिये हुए।
जो तुमको राक्षसके वध हित बिना रोषके लड़वावे॥
क्योंकि सुयश मिलता न उसे जो निर्दोषीको करता नष्ट।
योद्धागण तो सन्निमित्त ही धनुष झुकाकर होते हृष्ट॥
उत्तम लाभ धर्मसे होता, अक्षय मोद धर्म ही लाता।
सुख ऐहिकका धर्म प्रदाता, आश्रित जगत् धर्मका रहता॥*

* "Mayst thou, thus armed with shaft and bow
So dire a longing never know,
As, when no hatred prompts the fray
These giants of the wood to slay:
For he who kills without offence
Shall win but little glory thence.
The bow the warrior joys to bend
Is lent him for a nobler end,
....
The noblest gain from virtue springs
And virtue joy unending brings.
All earthly blessing virtue sends;
On virtue all the world depends."

सर्वांशतः रामायणमें हमें कर्तव्य, उपपन्नता तथा न्यायका गम्भीर धार्मिक ज्ञान उपलब्ध होता है। इसका संपूर्ण भाग आनुमानिक दर्शन अर्थात् आन्वीक्षकीकी सूक्ष्मताओंसे रहित है। उनकी कविताओंमें साधारण ज्ञानका अच्छा समावेश है। उन्होंने एक वार (काण्ड २सर्ग १०६) के सिवा आनुमानिक दर्शनके मतकी कहीं भी खबर नहीं ली है। यह स्थान वहां है, जहाँ जावालि अपनेको नास्तिक मानते हुए रामको चार्वाक (आसुरीय) नामसे प्रसिद्ध एक दर्शनसे ली गयी दलीलोंके द्वारा उनके पिताकी राजधानीमें लौट आनेके लिये राजी कर रहे थे।* रामने जावालिके दोषोंको अच्छी तरह अन्वेषण करने तथा उसकी भर्त्सना करनेमें केवल कविके भावोंको प्रकट किया है। अनुमानिक दर्शनके मत मनुष्य-के साधारण भावोंसे इतने दूर थे और साधारण ज्ञानके आधार-पर स्थापित कुल धार्मिक तथा सामाजिक संस्थाओंको वाक्-छलना तथा मिथ्या हेतुओंसे इस तरह नीचा दिखाते थे, कि कवि उनपर धैर्य्य नहीं रख सकते थे।

वाल्मीकिको औदार्यहेतुक, ब्राह्मणन्यायकर्त्ता बनानेवाली दूसरी विशेषता यह है कि वे हर जगह समाजका दरजा व्यक्ति-के ऊपर ही रखते थे। उसके साथ-साथ सामाजिक संस्थाको बिना विच्छिन्न किये ही वे व्यक्तिगत बुद्धि तथा चरित्रकी

* टेंडा साहबने सोक्रेटसके यूथोफ्रूनमें एक ऐसा ही कथाका पता लगाया है।

स्वतन्त्रतापूर्वक वृद्धि होनेके लिये सब सुविधा करनेको तैयार रहते थे। हमलोग दो उदाहरणोंको लें। पहला यह कि ऋष्य-श्रृङ्गकी कथामें जो प्रथम काण्डके ६वें और १० वें सर्गमें वर्णित है, उसमें वाल्मीकि इसलिये खेद नहीं करते कि राजकुमारी शान्ताने तपस्वीके पुत्र ऋष्यश्रृङ्गको मोहित कर लिया और इस कारण भी नहीं, कि ऋष्यश्रृंग एक क्षत्रियासे व्याह करने तथा होममें साथ देनेवाली सहकारिणी बनानेमें सहमत हुए। वाल्मीकिने विभाण्डक मुनिको अपनी पुत्रवधूके क्षत्रिया होनेपर भी उसे सत्कृत करनेके हेतु जोर करनेमें आगा-पीछा न किया। परन्तु उन्होंने ऋष्यश्रृङ्गको प्रायश्चित्त करनेके लिये विवश किया, क्योंकि ऋष्यश्रृङ्गने अपने पिताके परोक्षमें आश्रमको छोड़ा था और पिताकी आज्ञा लिये ही बिना विवाह किया था। इसी तरह सीताकी बात लीजिये—

वाल्मीकिको कोई उज्र नहीं था कि लङ्कासे परित्राता होनेपर सीताकी अग्नि-परीक्षा हो, जिससे उनके अकलुषित सतीत्व-का प्रमाण लोगोंको मिले। रामके मनका सन्देह मिट गया और यथासमय अपनी स्त्रीके लिये अयोध्या लौट आये और वहां उन्होंने सुखपूर्वक कुछ वर्ष बिताये। फिर जब जानकी जनताको प्रसन्न रखनेके लिये रामके द्वारा नारी जीवनकी सङ्कटतम अवस्थामें वनवासिता हुई तब सीताने यह सोचकर कि धैर्य नारियोंका परम धर्म है तथा रघुके वंशको बढ़ानेवाली भविष्य सन्तानोंके साथ-साथ अपनेको मार डालना अनुचित होगा,

आत्महत्या न करनेहीका विचार स्थिर किया। परन्तु कवि यह जानते थे कि धैर्य्यकी भी एक सीमा होती है। सार्वजनिक सभाद्वारा बुलायी जानेपर जब सीताको पुनः अग्नि-परीक्षाके लिये कहा गया तब कविने मानों सीताका पक्ष ग्रहण किया। इस बार जब कि वह निर्दोष और पवित्र थी उसे बहुमतकी स्वेच्छाचारिताको न मानना चाहिये था और जब समाज भलाईका ख्याल न करके एक निष्कपट निरपराधी जीवको पीसनेके लिये तुला था, तब कविका कहना हुआ कि वह इस कुटिल संसारकी निन्दास्पद स्वेच्छाचारिता माननेके बदले संसारसे विदा ही ले ले और वह ऐसी अवस्थामें धीरतापूर्वक मृत्युका सामना कर संसारको दिखा दे कि आत्मा सदा शरीर-पर विजय प्राप्त करती है। सीताने शरीर त्याग किया, पृथ्वी-माताने उस प्यारी पुत्रीको लेनेके लिये अपनी छाती खोल दी। देवताओंने स्वर्गसे फूल बरसाये। जबतक मूर्ख जनता उनके मूल्यका निर्धारण करे तबतक यह घटना हो गयी। इसकी समता ईसा मसीहकी भविष्यद्वाणी तथा एथेन्सके सोक्रेटसके अपेक्षाकृत विशेष ऐतिहासिक दृष्टान्तसे होती है।

वाल्मीकि कब किस अवस्थामें रहे, यह कहना कठिन है। प्रायः ये तपस्वी अपने समयकी रीतिका पालन कर तीसरेपनमें ध्यान और योगकी साधनामें अपने पिछले दिन बितानेके लिये संसारसे अलग हुए। ऐसा विश्वास किया जा सकता है कि उन्होंने कोशलके समीप अपना आश्रम बनाया। जहाँ गङ्गा

यमुनाके सङ्गमके निकट युगान्तर करनेवाली अपनी रामायणकी उन्होंने चिन्ता, सम्वर्धना तथा समाप्ति की। वे ऐसे समयमें हुए, जब ऋषियोंकी भिन्न-भिन्न बस्ती गङ्गा और गोदावरी नदीके बीचके देशोमें फैली हुई थी। इससे किसीको आश्चर्यित नहीं होना चाहिये कि वे उत्तर चित्रकूटसे लेकर दक्षिण जनस्थान (आधुनिक नासिक) तक (जो बम्बईसे करीब ७५ मील उत्तर पश्चिम है) रामके भ्रमणके विशद उपाख्यानमें अपने व्यक्तिगत पर्यटनकी स्मृति ही छोड़ गये हैं। शायद वे कोशलसे गोदावरी दक्षिणापथके निकट पतिष्ठान (आधुनिक पैठान) तक गयी हुई विशेष तिजारती सड़कसे और उसमेंके मुख्य-मुख्य ठहरावोंसे परिचित थे। इसका रोचक वृत्तान्त पारायणवग्ग नामी बौद्ध धर्म पद्यावलीकी भूमिकामें पाया जाता है। गोदावरी नदीके दक्षिण-वर्ती देशोंकी उन्हें प्रत्यक्ष जानकारी नहीं थी। इन्हें उन्होंने मोटा-मोटी किष्किन्धा और लङ्कामें विभक्त किया है। ये देश क्रमशः योग्यता, स्वभाव और धर्ममें परस्पर विभिन्न वन्दर और राक्षस रूपी दो जातियोंके द्वारा अधिवासित थे। बौद्ध वलाहास जातकके दृष्टान्तके समान रामायणमें भी लङ्काकी स्त्रियां चरीत्र-हीना तथा निर्लज्जा कहकर निन्दित हुई हैं। परन्तु वाल्मीकि मानते हैं कि किष्किन्धामें उसके निवासी वानरगणकी एक प्रबल राजनैतिक संस्था, सामाजिक व्यवस्था और आर्योचित्त धर्म था। समग्ररूपसे उनके किष्किन्धा और लङ्काके वर्णनको आचार्य ग्रीफिथ (Griffith) के निम्नलिखित कथनकी दृष्टिसे देखना चाहिये।

"जैसा कि यह काव्य कितनी जगहोंपर सूचित करता है कि रामने जिन सबोंसे लड़ाई की,वे संस्कृत भारतवर्षीयोंसे उत्पत्ति, सभ्यता और आराधनामें भिन्न थे। परन्तु इस विषयमें रामायणके कविने ग्रीसदेशीय कवि होमरके सदृश, जो ट्राय (Troy) में ग्रीसके समान रीति, नियम और आराधनाका निरूपण करते हैं, लङ्कामें संस्कृत आर्य्यावर्तके जैसे नाम, आचार और आराधनाका निरूपण किया है।" *

अतः रामायणमें इस विषयकी काफ़ी सूचना है कि वाल्मीकि एक ब्राह्मण, न्यायकर्त्ता और तपस्वी थे। उनका जीवन नगरकी दीवारोंके अन्दर तथा सुन्दर आश्रमोंमें बीता। ये दोनों स्थान अण्डाकार वृत्तके दो केन्द्र थे, जिनके चारों तरफ उनका समूचा जीवन घूमा। उनकी कविता, यद्यपि सर्व साधारण हिन्दू-जनताकी दैनिकचर्य्याके विस्तारसे हीन है तथापि हिन्दुओंके उत्कृष्ट जीवनके एक सच्चे चित्रकी रक्षा करती है। यह कोई नहीं कह सकता कि वे कितने दिनोंतक जीवित रहे;परन्तु उनका जीवन व्यर्थ न गया। वे ब्रह्माकी निम्नलिखित भविष्यद्वाणीके

* The people against whom Rama waged war are as the poem indicates in many places, different in origin, civilisation and worship, from the Sanskrit Indians, but the poet of the Ramayan, in this respect like Homer who assigns to Troy customs, creed and worship similar to those of Greece places in Ceylon......names, habits and worship similar to those of Sanskrit India."

अनुसार सम्यक्‌रूपसे पायी हुई ख्यातिको उपभोग करनेके लिये यथेष्ट कालतक जीवित रहे।

"जबतक निश्चल धरतीपर है बहती नदियां।
शैल खड़े हैं, तबतक गुरुतम अतिशय बढ़ियां।
यह रामायण बची रहेगी भूमण्डलमें।
संशयकी है बात नहीं इसमें, सच जानो॥
जबतक है यह गान पुरातन रामायणका।
पृथ्वीपर पूजित तबतक यह निश्चय होगा।
तुम प्रतिदिन बढ़,पहुंच सकोगे उच्च लोकमें।
मेरे संग तुम वास करोगे ब्रह्मलोकमें॥" *

॥ इति ॥

* " As long as in these firm set land
The stream shall flow, he mountains stand,
So long throughout the world, be sure,
The great Ramayan shall endure
While Ramayan's ancient strain
Shall glorious in the earth ramain,
To higher spheres shalt thou arise
And dwell with me above the skies."

हाथ बढ़ाइये ।　　　　　　　हाथ बढ़ाइये ॥

आनन्द-पुस्तक-माला
की
शीघ्र प्रकाशित होनेवाली पुस्तकें

'भेद-भरी सुन्दरी'

लेखक, पं० ईश्वरीप्रसाद शर्मा

यों तो उपन्यास ढेरके ढेर बाजारमें नित्य ही बिका करते हैं, पर यह अपने ढंगका बिलकुल ही निराला है। पढ़कर पाठक आनन्द-सागरमें तैरने लगेंगे। शर्माजीके कलमोंकी यह करामात है। भाषा ऐसी सरल एवं मनोहारिणी है कि समग्र पढ़े बिना छोड़नेका मन नहीं होता। मूल्य केवल ।≈) दश आना है।

'प्रसून-पुंज'

लेखक, बा० युगलकिशोर प्रसाद 'वसन्त'

पुस्तकका क्या कहना! फुटकर कविताओंका संग्रह है, पर है ऐसा कि पढ़नेपर चित्त प्रसन्न हो जाता है। अधिक वर्णन करना व्यर्थ है। मूल्य केवल ।)

'तिलक-वचनामृत'

इसमें लोकमान्यजीके कथनोंका खासा संग्रह है। इसके विषयमें अधिक कहना सूर्य्यको दीपक दिखाना होगा। मूल्य ≈) दो आना।

जो सज्जन इस मालाके स्थायी ग्राहक होना चाहें वे कृपया लौटती डाकसे आठ आना प्रवेश-फी भेजकर मालाकी ग्राहक-सूचीमें अपना नाम लिखालें। मालाकी समस्त पुस्तकें उन्हें पौने मूल्यमें भेज दी जायंगी। विशेष जाननेके लिये पत्र-व्यवहार नीचे लिखे पतेसे करें।

मैनेजर—
आनन्द-पुस्तक-माला कार्य्यालय, पुर्णिया